गेरू की लिपियाँ

अमरनाथ श्रीवास्तव

गेरू की लिपियाँ

अमरनाथ श्रीवास्तव

प्रथम संस्करण : १९९०

मूल्य : रु० ४५/-

प्रकाशक : **हिन्दुस्तानी एकेडेमी**, इलाहाबाद

मुद्रक : **रामायण प्रेस**, ७३९-पुराना कटरा (पिंक मार्केट),
इलाहाबाद

समर्थ कवि

स्वाभिमान के धनी

भाई स्व० प्रताप विद्यालंकार

को

उनके जन्म-दिवस विजयादशमी पर

सादर

समर्पित

प्रकाशकीय

गीत कविता की आदिम जमीन है और नवगीत आधुनिक चेतना का समर्थ संवाहक। 'कवि' शब्द अपनी सहज अभिव्यक्ति में काक-कोकिल का अतिक्रमण करता हुआ मानव-कंठ तक पहुँच जाता है जहाँ वह भाषा का रूप ग्रहण कर लेता है। आज मानव-स्वर अन्तःकरण की आवाज बन गया है।

'स्वभावो मूर्द्धि वर्तते' के अनुसार कवि रचनात्मक कर्म के बीच अपने स्वभाव की खोज करता रहता है। काव्य हर प्रकार के रचना-क्षण में उसे नितान्त अपना प्रतीत होता है। सृजन उसे श्रम नहीं लगता। संवेदना-संवहन उसकी रचना का प्राथमिक मूल्य होता है। अपनी रचना का वह पहला मनोगत श्रोता होता है जिसमें परिवर्धन-संवर्धन या संक्षेप-निक्षेप का उसका अधिकार सर्वमान्य है। वह कुछ कहना चाहता है तो कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती—ऐसा वह सोचने लगता है। अभिव्यक्ति के हर खतरे का सामना करने के लिए वह तत्पर हो जाता है। उसे लगने लगता है—'कवि वही जो अकथनीय कहे'।

कविता मनुष्य की उर्वरता का पर्याय है। रचना-कर्म में वह तरह-तरह से अभिव्यक्त होती है। विभिन्न कलाएँ एक बिन्दु पर कविता से अभिन्न हो जाती हैं। कविता और चित्रकला के सन्दर्भ में मेरा निजी अनुभव इसका प्रमाण है।

'गेरू की लिपियाँ' मेरे काव्य-संस्कार के इतने करीब लगी कि मैंने इस रचना को प्रकाशित करने का मन बना लिया। सामान्यतया कविता-संकलन का प्रकाशन बोझ समझ लिया जाता है, पर अच्छी कविता ने इसका जवाब अनेक स्तरों पर अनेक रूपों में दिया है। एक स्तर वह है जिससे यह रचना जुड़ी है।

'मेरी वाणी गैरिक वसना' कहने में एक कवि को इसी प्रयाग में गौरव का अनुभव हुआ। मानस में 'जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे' की उत्प्रेक्षित विसंगति को कालिदास ने मेघदूत में यक्ष द्वारा धातुराग

(गेरू) से शिलांकित प्रिया के चित्र की कल्पना से निरस्त कर दिया। मैं मन ही मन उन शिलाचित्रों तक पहुँच गया जो मध्य प्रदेश की गुफाओं में हजारों वर्ष पहले आदिम मनुष्य ने अंकित किये थे। 'गेरू की लिपियाँ' का कवि किसी सिन्धु घाटी में खोई लिपियों के अनुवाद तक पहुँच जाता है, कभी अन्तःसलिला लिपियों का टूटना उसे याद आ गया है और कभी अखबारों पर उभरती लिपियों से बने चेहरे उसके सामने आ जाते हैं। उसका कवित्व अनपढ़ों की वेदना लेकर साक्षरों के इर्द-गिर्द मँडराता है और कभी 'घोटुल' की आदिवासी प्रथा के सहारे अमरकंटक के मनोरम दृश्य देखने लगता है, कभी भेड़ाघाट की चट्टानों के बीच अपना रास्ता बनाती नर्मदा की वह छवि आँकने लगता है जिसे 'एक भारतीय आत्मा' ने चित्रमय रूप में सदा अपनी आँखों के सामने प्रेरणा बनाकर रखा। सब जानते हैं कि कविता कवि से आगे जाती है। कवि समर्थ हो तो वह युगों के अन्तराल को पाट देती है।

उसकी भाषा रचनात्मक संस्पर्श से दीप्त होकर कभी 'छाँह का चकत्ता' बन जाती है, कभी जंगल की गुर्राहट; कभी काल-पात्रों का लौटना उसे सार्थक लगता है, कभी प्रत्यंचित भौंहों की ओर देखना; कभी सलीबें चमकाते लोगों पर उसकी दृष्टि जाती है, कभी आटे की 'गोली' सा मछली-मछली बँटना उसे खलता है। 'धोखे का पुतला', 'बूढ़े तरु से ब्याही कन्या' और 'यह किसका बेटा है' की जिज्ञासा मुड़कर देखने पर अपनी ही परछाईं लगती है। ट्रेन शहर से शहर के रिश्ते ढूंढ़ती है और मानवता उसकी पटरियाँ। बेटा खोई माँ को पटरियों पर देखता है।

'दावानल देख रहा भोला मृगछौना' में मुझे अपने 'युग्म' की ये पंक्तियाँ याद आने लगती हैं—

दावानल में जलते हिरने की व्यथा मिली।

अमरनाथ जी ने इसकी भूमिका में जो कहा है, वह नवगीत के सुथरेपन के साथ लय-बोध के नयेपन पर दृष्टि डालना है जिस पर प्रायः लोग नहीं देखते। कथ्य और शिल्प से बँधती लयात्मक भाषा और आकार निर्धारित करती परिधि में आकर नवगीत एक ही साथ शहर और गाँव की कविता को जोड़ने का संकल्प करता है। वह अर्थ की लय को आन्तरिक लय के रूप में व्याख्यायित करता है।

आदिम एकांत के आत्म-पक्ष में तथा नयी कविता के आठवें अंक में 'नयी कविता किसिम किसिम की' कविता शीर्षक लेख में मैंने 'गीत कविता', 'नवगीत', प्रगीत और एण्टीगीत के अन्तर्गत जो लिखा, वह अब भी अर्थपूर्ण है। गुजराती गीतकाव्य को उर्मि काव्य कहते हैं।

मैंने कभी नयी कविता और नवगीत में विरोध नहीं माना, भले ही नवगीत के प्रवर्तक ऐसा दावा करें। 'मध्यगीत' के शिल्प में आज की कविता है अन्तर्निहित—कवि का ऐसा कहना इस संग्रह के लिए अतिशयोक्ति नहीं है। प्रयाग की रचनाशीलता के क्रम में मुझे विश्वास है। काव्य के मर्मज्ञ गुण-दोषों की परख के साथ इसका विवेकपूर्ण स्वागत करेंगे।

जगदीश गुप्त
सचिव

भूमिका

इस संकलन में सम्मिलित मेरी कविताएँ कच्ची दीवार पर बरसात की बौछार से टूटती हुई गेरू की लिपियाँ हैं जो अपनी मांगलिक उत्फुल्लता पर होने वाले प्रहार को व्यक्त करने का प्रयास करती हैं। अपनी इन रचनाओं में मैंने अपने व्यक्तिगत और सामाजिक परिवेश तथा उसके दबाव को शब्द देने की कोशिश की है। मेरी समझ में एक सही रचना व्यक्ति के अन्तःलोक और उसके बाह्य परिवेश की साक्षी है। रचना चाहे कवि के आर्थिक, राजनीतिक दबाव के कारण बने या मात्र आदमी होने के नाते उसके निजी संसार की हो, लेकिन उसका कविता होना पहली शर्त है। मेरे कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि अच्छी कविता रचने के लोभ में, रचनाकार पहले से यह क्षेत्र तय कर ले। प्रायः निजी सन्दर्भों में भी रचनाकार की अनुभूति समाज-सापेक्ष होती है। एक सही रचना व्यक्ति की निजता और उसके आँसू को सहेज कर तो रखती है, लेकिन वह समाज में रहने वाले व्यक्ति को भी केन्द्र में रखती है। सार्थक रचना आडम्बर-विरोधी होती है। वह शब्दाडम्बर का विरोध करती है और ओढ़ी हुई सपाटबयानी का भी। मेरी रचनाएँ उपर्युक्त दृष्टि को व्यक्त करने की विनम्र कोशिश हैं।

मेरी राय में आत्मबोध और युगबोध को अलग-अलग खानों में रखकर इन कविताओं को देखने से इनके साथ न्याय नहीं हो पायेगा। बहुत बार साहित्य को समझने के लिए एकांगी प्रयास किये जाते हैं। कविता में युग के सन्दर्भ को समझने के लिए जहाँ नीर-क्षीर विवेक की आवश्यकता है, वहीं नीर-क्षीर के स्वभाव को स्वीकार करने के साहस की भी आवश्यकता है। बहुत बार रचना में जो बात व्यक्तिगत दिखाई देती है, वह मूलतः सामाजिक होती है और जो रचना सामाजिक मालूम पड़ती है, उसके बहुत बड़े हिस्से में रचनाकार का

निजत्व होता है। इसलिए किसी कविता के सामाजिक सन्दर्भ को सीधे या सपाट ढंग से समझना या समझाना एक सार्थक रचना के साथ अन्याय है। कोई भी रचना एक व्यक्ति-विशेष की होती है जिसमें रचनाकार की निजता और उसके व्यक्ति-मानस के माध्यम से ही उसके व्यक्ति तथा सामाजिक परिवेश की अभिव्यक्ति होती है। किसी समाज-सापेक्ष रचना को आत्म-केन्द्रित और व्यक्तिनिष्ठ घोषित करने से पहले हमें यह सोचना चाहिए कि कहीं हम पूर्वाग्रह के शिकार तो नहीं हैं। बाहर से एकालाप दिखने वाली कविता सामाजिक अव्यवस्था के अन्तर्गत अलग-थलग पड़े आदमी के दर्द की कविता भी हो सकती है। जिस रचना में हमें सतही तौर पर बड़बोलापन नज़र आता है, वह समाज की जिजीविषा और संघर्ष की कविता भी हो सकती है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब कविता गम्भीरता से पढ़ी जाये। यह भी देखना है कि आलोचना की रूढ़ शब्दावली कहीं एक सही कविता को अपने पाठकों तक सम्प्रेषित होने से रोकती तो नहीं है।

नवगीत प्रयोगोन्मुख कविता की गतिशील धारा है। इसमें गीतों की भावना और नई कविता का विचार भी है। इसलिए छायावादोत्तर गीतों के सुघड़ शिल्प की जगह छन्दों का अनगढ़ और ऊबड़-खाबड़ होना स्वाभाविक है। लेकिन यही खुरदरापन नवगीत की उपलब्धि भी है, क्योंकि काव्य-सरिता के पक्के घाटों और सीढ़ियों को छोड़कर सामान्य जन से जुड़ने वाले कच्चे घाटों की ओर जाने वाले रास्ते ऊबड़-खाबड़ होने के बावजूद सार्थक और प्रासंगिक होते हैं। नवगीत के खुरदरापन में भावों की नयी लय और शिल्प की नयी चमक मिलती है। प्रस्तुत संग्रह की रचनाएँ इस दृष्टि से कहाँ हैं, यह तो सुधी पाठक ही निश्चित करेंगे। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि सुघड़ छन्दों की अपेक्षा अपनी अभिव्यक्ति की ज़रूरत के अनुसार अनगढ़ छन्दों को मैंने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

नवगीत को भ्रामक बनाने में कुछ लोगों की यह समझ भी ज़िम्मेदार है कि अमुक कवि गाँव का है और अमुक कवि शहर का। एक सही रचना अपने ऊपर ऐसे विभाजन आरोपित करने का बराबर विरोध करेगी। किसी रचना के मूल में रचनाकार का जीवनानुभव और उसकी दृष्टि होती है। गाँव और नगर का प्रतीक तो ऊपर की

सतह है जो जीवनानुभव को व्यक्त करने के साधन हैं। नवगीत एक ही साथ गाँव की भी कविता है और शहर की भी। आज भी नगर-बोध की घुटन में गाँवों से बिछड़ने का दर्द है। इस दर्द के केन्द्र में गाँव का आदमी ही है। इसी तरह गाँव के जीवन- मूल्य के टूटने के पीछे वह शहर है जो गाँवों के भीतर घुस कर पैंतरे बदल रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस संकट को अलग-अलग बाँट कर नहीं समझा जा सकता।

हर युग की एक विशेष अवस्था हुआ करती है। यह अवस्था उस युग की सामाजिक अवस्था के कारण होती है। दूसरे शब्दों में यही अवस्था रचनाकार का सामाजिक परिवेश हुआ करती है। यह परि-वेश किसी कवि के माध्यम से व्यक्त होने के लिए अपनी लयात्मक भाषा और आकार निर्धारित करता है। किसी कविता की पहचान उसकी लय के कारण ही सम्भव है। यह लय, चाहे वह अर्थ की लय ही क्यों न हो, छन्द में होने के कारण जनमानस की धरोहर हो जाती है। इस तरह जनमानस से जुड़ने के लिए अच्छी कविता का छन्द में होना उसकी एक विशेषता है। नवगीत इस विशेष जरूरत को पूरा करता है।

मेरी समझ में रचना चाहे मुक्त छन्द की हो या छन्द की, विशिष्ट आन्तरिक लय के कारण ही कविता की श्रेणी में आती है। यहाँ तक कि अनूदित होने पर भी वही रचना अपनी पहचान बनाती है जो इस आन्तरिक लय का संवहन करती है, वर्ना अनुवादित होने पर अच्छी कविता और खराब कविता में फर्क करना मुश्किल हो जायेगा। इस लय का अभाव होने से अच्छी नीयत से लिखी गई कविता भी खराब हो सकती है।

कुछ लोगों का कहना है कि युग-सन्दर्भ की कविता में क्रोध और आक्रोश का तेवर और तेज होना चाहिए। यह बात नवगीत की चर्चा में अकसर उठायी जाती है। मैं स्पष्ट करना चाहूँगा कि रचना की एक कलात्मक परिधि होती है और भावों की अभिव्यक्ति इस परिधि में ही वांछित है और सम्भव भी। यह परिधि जो कथ्य और शिल्प दोनों से बनती है, इसे तोड़ने से कविता कमज़ोर हो जाती है। क्रोध और आक्रोश अगर कविता में व्यक्त होते हैं, तो कविता की सीमा में ही उनकी अभिव्यक्ति अपेक्षित है।

हमें यह भी नहीं भूलना है कि काव्य का आक्रोश मात्र अरण्यरोदन न होकर सत्यान्वेषी भी होता है। कविता उन बिन्दुओं को भी छूती है जहाँ क्रोध या आक्रोश के लिए जगह बनती है। कविता में ऐसे भाव संयमित और कभी-कभी प्रच्छन्न भी होते हैं जो सम्प्रेषित होकर उद्घाटित होते हैं। कविता का आक्रोश और गद्य में व्यक्त विरोध के स्वर में अन्तर होना स्वाभाविक है। कविता का आक्रोश निराशा या व्यंग्य के स्वर में भी व्यक्त हो सकता है, लेकिन सम्प्रेषणीयता के स्तर पर रचनाकार का आक्रोश ही सम्प्रेषित होता है। कविता की सही पकड़ न होने से भय या आक्रोश के स्वर को आत्मकेन्द्रित निराशा का स्वर समझने की भूल भी हो सकती है।

नवगीत के संदर्भ में छन्दों की प्रासंगिकता का भी सवाल उठाया जाता है और कहा जाता है कि छन्दों की सीमा अभिव्यक्ति में बाधक होती है। लेकिन जहाँ तक मैं समझता हूँ कि सीमा जहाँ भय उत्पन्न करती है, वहीं सही रचना की कसौटी भी होती है। अगर फर्श पर बनी हुई ताजमहल की तस्वीर के समानान्तर कोई शिल्पी चावल पर ताजमहल की तस्वीर बनाये तो निश्चित रूप से चावल पर बनी कृति अपनी सीमा के कारण मूल्यवान् होगी। फिर भी एक बात मैं साफ़ कह देना चाहता हूँ कि नवगीत और नई कविता में कोई विरोध नहीं है। नवगीत नई कविता के सूत्र को आगे बढ़ाने वाली युग-सन्दर्भ तथा अधुनातन भावबोध की छन्दोबद्ध रचना है। नवगीत अधुनातन सन्दर्भ में छन्द की विश्वसनीयता और उसके सामर्थ्य पर लगाये गये प्रश्नचिह्न का जवाब है। कुछ नई कविता के वक्ता छन्दों की प्रासंगिकता का प्रश्न उठाकर उन रचनाकारों का उल्लेख करते हैं जो अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में भयंकर विसंगति के दौर से गुज़रते हुए भी कोमल-कान्त पदावली में प्रेम, शृंगार और विरह के गीत ही लिखते रहे। उनका जीवन-संघर्ष उनके गीतों में कहीं नहीं मिलता। लेकिन यह उदाहरण उन बहुत से लोगों पर भी लागू होता है जो व्यक्तिगत और सामाजिक विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए छन्द का बंधन तोड़ने वालों के साथ थे, लेकिन मुक्त छन्द में भी वे वही कुछ लिखते रहे जो उनके पूर्ववर्ती गीतकारों ने लिखा। रचनाकार की सीमाओं के लिए छन्द

या मुक्त छन्द कतई जिम्मेदार नहीं है। अच्छा नवगीत कमजोर छन्दमुक्त या छन्द के नाम पर शिविरबद्ध छद्म लेखन का उत्तर है।

नवगीत की चर्चा में मुझे मुक्तिबोध की निम्नांकित पंक्तियाँ प्रासंगिक मालूम होती हैं—

"मेरा अपना मत है कि हमारी साहित्य-चिन्ता या कलात्मक सृष्टि का विकास तभी होगा जब हम वास्तविक जीवन में व्यपाक विविध जीवनानुभवों से सम्पन्न होंगे तथा हमविक्षुब्ध उत्पीड़ित मानवता (वायवीय नहीं मूर्त) के आदर्शों से एकात्म होंगे। इसके बिना तत्त्व-समृद्धि और तत्त्व-परिष्कार की समस्या अधूरी रह जायेगी। मुझे विश्वास है कि नयी काव्य-प्रवृत्तियाँ, चाहे वे गीत के रूप में ही क्यों न आयें, उक्त कार्य को कर सकेंगी।

× × ×

जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि एक विशेष शैली को दूसरी शैली के विरुद्ध स्थापित करती है। गीत का नयी कविता से कोई विरोध नहीं है, न नयी कविता को उसके विरुद्ध अपने को प्रतिष्ठापित करना चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि गीत में नये तत्त्व आयें न कि गीतिशैली की धारा की समाप्ति हो।"

मुक्तिबोध रचनावली, भाग ५, पृ० १०४-१०५

मुक्तिबोध की यह चिन्ता नयी काव्य-प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में गीतों पर पूरी तरह लागू होती है। सम्भवतः छायावादोत्तर रूमानी बिम्बधर्मी गीतों को देखकर मुक्तिबोध उसे विविध जीवनानुभवों से सम्पन्न होने की अपेक्षा करते हैं। लेकिन गीत ने जीवन के व्यापक अनुभवजन्य तनावों को व्यक्त करने की जो शैली और भाषा विकसित की है, वह मुक्तिबोध की अपेक्षा के अनुरूप आज का नवगीत है।

मैं एक बात साफ़ कर देना चाहता हूँ कि जो लोग छायावादोत्तर बिम्बधर्मी रूमान के गीतों की आसक्ति लेकर नवगीत तक जाना चाहते हैं, वे नवगीत के भविष्य पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। हर जगह टटके रसात्मक और रूमानी बिम्बों की तलाश में ऐसे लोग नवगीतों में तत्त्व-समृद्धि और अधुनातन भावबोध तथा इनसे जुड़ी हुई सामाजिक सोच को न समझ पाने की भूल के शिकार हैं।

नवगीत नई कविता की सौन्दर्याभिरुचि और आज की मुक्त छन्द की रचना में व्यक्त सामाजिक सन्दर्भ को उजागर करने वाली छन्द-रचना है। यह गीत के शिल्प में आज की कविता है। इसे समझने के लिए छायावादोत्तर गीति-शिल्प के साथ ही आज की कविता को भी ध्यान में रखना होगा। गेयता तथा रूमानी रसात्मकता की रूढ़ अवधारणा से मुक्त होकर ही नवगीत की लय और अन्विति को समझा और परखा जा सकता है।

मेरी रचना कहाँ तक नवगीत है तथा छन्द की कविता पर व्यक्त मेरे विचारों से कितना मेल खाती है, इसका निर्णय मैं सुधी समीक्षकों और पाठकों पर छोड़ता हूँ।

अन्त में मैं हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद का और विशेष रूप से इस संस्था के अध्यक्ष डॉ० रामकुमार वर्मा, सचिव डॉ० जगदीश गुप्त तथा सहायक सचिव डॉ० रामजी पाण्डेय का आभारी हूँ जिनके सद्प्रयास से यह संग्रह प्रकाशित हुआ है।

अमरनाथ श्रीवास्तव

अ/२१५, गोविन्दपुर कालोनी
इलाहाबाद—२११००४

विजयादशमी, शनिवार, वि० संवत् २०४७
तदनुसार दिनांक २९ सितम्बर, १९९०

अनुक्रम

गेरू की लिपियाँ

छन्द हुए होते
सम्वाद हुए होते
प्रचलन के आगे
अपवाद हुए होते

●

बँधे हुए पानी में
हलचल क्या होती
एक लहर अनहोनी
कहाँ तक भिगोती
खोखली हँसी हँसती
बालू-बालू फँसती
रेत की नदी के—
अवसाद हुए होते

● ●

सूर्यमुखी की फैली—
आँखों से छलका
ढलते सूरज के
आकाश का धुँधलका
धुँधलेपन से बचती
सिर्फ इन्द्रधनु रचतीं
परी कथाओं के—
प्रतिवाद हुए होते

• • •

कच्ची दीवारों पर
गेरू की लिपियाँ
मेट गई बौछारें
उत्सव की तिथियाँ
दबी हुई माटी में
किसी सिन्धु-घाटी में
खोई लिपियों के—
अनुवाद हुए होते।

□

गुर्राहट जंगल की

पेड़ों की दुनिया है
जंगल की सत्ता
हर आहट भाँप रहा—
है पत्ता-पत्ता

●

सूरज जब देता है
धूप के निवाले
हाथ बढ़ा देते
ऊँची फुनगी वाले
बौने पौधों पर है
छाँह का चकत्ता

● ●

सुस्ताने बैठे हैं
हिरनों के जोड़े
गुर्राहट जंगल की
मार रही कोड़े
कस्तूरी मृग ठहरा
जनम का निहत्था

● ● ●

टहल बजाते—
बतियाती बहनें छोटी
रानी मधुमक्खी की
किस्मत है खोटी
रीछ के हवाले है
शहद भरा छत्ता

● ● ● ●

अजगर जो चाकरी—
नहीं करता, बोला—
उजड़ गया अब तो
खरगोशों का टोला
मुझसे यह जगह—
नहीं छूटी अलबत्ता

● ● ● ● ●

अर्से से सुलग रही हैं—
अपनी हद में
दो डालें चन्दन की
बिजली की ज़द में
लोक-कथा में हैं
उदयन वासवदत्ता

□

इस हिरण्यगर्भा धरती पर

शिला-लेख हैं हम कन्धों पर
ढोते हैं इतिहास तुम्हारे

●

जगमग फानूसों के नीचे
सन्ध्या की संगीत सभायें
खुशबू, चहक, फुलेल बाँटतीं
अपनी अन्तर्व्यथा छिपाये
जब होते हैं साथ तुम्हारे
चेहरे ठकुर सुहाती वाले
हम सहते हैं पीक पान की
हास और परिहास तुम्हारे

● ●

हम बैरम ख़ाँ भी होंगे तो
बदले में वैराग्य मिला है
सब पौरुष पुरुषार्थ तुम्हारे
हमको केवल भाग्य मिला है
चुने गये हम दीवारों में
जहाँ हमारी जगह नहीं थी
शायद तुमने सोचा होगा
चर्चित हों रनिवास तुम्हारे

● ● ●

काल-पात्र लौटा जाते हैं
जहाँ कहीं भी गुम होते हो
इस हिरण्यगर्भा धरती पर
सबसे पहले तुम होते हो
चारण के हर उच्चारण से
तुम सहस्रनामी होते हो
सुमिरेंगे पीढ़ी दर पीढ़ी
दास और अनुदास तुम्हारे

● ● ● ●

निस्सन्तान गुलाम रहे तो—
किसे मिलेगी सजा तुम्हारी
कौन तुम्हारा रथ खींचेगा
किसे कहेंगे प्रजा तुम्हारी
काल-चक्र की धुरी हुए जो—
संवत्सर यह बतलाते हैं
वर्षगाँठ कोई हो, लेकिन
दिवस तुम्हारे मास तुम्हारे

● ● ● ● ●

जड़ता मेरी चोर न लूटे
तुमने बैठाये हैं पहरे
आरोपित आलेख हमारे—
सीने पर जख्मों-सा ठहरे
तुम क्या जानो कितनी टूटीं—
मेरी अन्तःसलिला लिपियाँ
जब भी चमके मेरे ऊपर
छन्द और अनुप्रास तुम्हारे
शिलालेख हैं हम कन्धों पर
ढोते हैं इतिहास तुम्हारे

□

रैदास की कठौती

मन चंगा, गंगा, रैदास की कठौती
लोग छीनकर मुझसे माँगते फिरौती

●

शहरों का निर्विकार ठंढापन लायें
बाहर से गर्मजोश गाँव की हवायें
दुधमुँहे अमोले को वज्र की चुनौती

● ●

आसमान देखें क्या करे क्या बहाना
भला लगे पंछी को पिंजरे का दाना
बेड़ी है प्यारी ज्यों बिटिया इकलौती

● ● ●

हरे-भरे पीपल भी जड़ से हैं पीले
नदियों से राढ़ करें बालू के टीले
ले गये कगार आर-पार की मनौती

□

देखें क्या होता है

बन्द दिशाओं के दरवाजे
प्रश्नों के जंग लगे ताले
देखें क्या होता है

एक बार सन्तुलन सँभालें
एक फूल हवा में उछालें
देखें क्या होता है

●

देहरी के बाहर कचनारों के वन फूले
खिड़की से बँधे-बँधे हम
बादल ये कुमकुमी गुलाल के
जैसे मेरे आँगन घिरने को बने नहीं
चुभता रंगों का मौसम

धूमिल वस्त्रों में ओ ज़िन्दगी !
माना यह तुम्हें अभी फागुन फबता नहीं
कह दो तो आँचल के एक छोर
रंग के हल्के छींटे डालें
देखें क्या होता है ।

● ●

पूरा सप्ताह सात खम्भे का खंडित पुल
जिस पर शहतीरें टिकती नहीं
मेरी विध्वंसित ऊँचाई को
पाँवों के नीचे की गहराई पी रही
परछाईं तक भी दिखती नहीं

खोई-खोई उदास ज़िन्दगी
माना यह, तुमको अब बचपन रुचता नहीं
कह दो तो इस टूटे पुल से
एक और कंकड़ी गिरा लें
देखें क्या होता है

□

आतिथेय पंछी ऋतुओं के

तेज़ हवा के हाथ लग गये
रूई हुए सपने सेमल के
सपने ऐसे क्यों आते हैं
इतना समय किसे है देखे ।

●

रग-रग में बजते सन्नाटे
हवा मारती मुँह पर चाँटे
पक्के खातों में जाते हैं
कच्चे व्यापारों के घाटे
लगातार चुप रहने वाले
अपने गीत कहाँ गाते हैं
इतना समय किसे है देखे ।

● ●

लौट गये जल की रेखायें
धरती पोखर कहाँ छिपाये
मटमैले जल पर आते हैं
बदहवास चीलों के साये
जल-विहीन बादल मछली की—
आँखों में क्या-क्या लाते हैं
इतना समय किसे है देखे।

● ● ●

छेड़ गये दिन भूले बिसरे
सूरजमुखी सवेरे निखरे
शारदीय उन्मुक्त दिशायें
सगुन बाँचते खंजन उतरे
आतिथेय पंछी ऋतुओं के
मौसम गये कहाँ जाते हैं—
इतना समय किसे है देखे।

□

नर्मदा के जल बताओ

जब अकेले तुम चले थे
तब तुम्हारे साथ क्या था
नर्मदा के जल बताओ

●

था तुम्हारे पास ऐसा क्या
कि अपना घर बसाओ
आदिवासी अमरकंटक पिता—
क्या देता बताओ
तुम्हें रचने में किसी—
सम्भावना का हाथ क्या था
नर्मदा के जल बताओ

● ●

सतपुड़ा के जंगलों का—
सो गया संसार जैसे
देखता आकाश भूखे भील—
का परिवार जैसे
किन्तु ऐसी नींद पर
अविरल, अनन्त प्रपात क्या था
नर्मदा के जल बताओ

● ● ●

थकी-हारी देह टूटी
बँट गये तुम फ़ासलों में
एक लम्बी उम्र गुज़री
पत्थरों के काफ़िलों में
आँख भर आई जहाँ
जल का वहाँ अनुपात क्या था
नर्मदा के जल बताओ

● ● ● ●

इस तरह खुल कर
गले मिलती हुई नदियाँ कहाँ थीं
संगमरमर के कगारों की—
मुखर छवियाँ कहाँ थीं
तब कहाँ तीरथ बने थे
और भेड़ाघाट क्या था
नर्मदा के जल बताओ

□

शोभा-यात्रा

प्रत्यंचित भौंहों के आगे
समझौते केवल समझौते

•

भीतर चुभन सुई की
बाहर सन्धि-पत्र पढ़ती मुस्कानें
जिस पर मेरे हस्ताक्षर हैं
कैसे हैं ईश्वर ही जाने
आँधी से आतंकित चेहरे
गर्दखोर रंगीन मुखौटे

• •

जी होता आकाश-कुसुम को
एक बार बाँहों में भर लें
जी होता एकान्त क्षणों में
अपने को सम्बोधित कर लें
लेकिन भीड़ भरी गलियाँ हैं
कागज़ के फूलों के न्योते ।

● ● ●

झेल रहा हूँ शोभायात्रा—
में चलते हाथी का जीवन
जिसके ऊपर मोती की झालर
लेकिन अंकुश का शासन
अधजल घट से छलक रहे हैं
पीठ चढ़े जो सजे कठौते ।

□

जंगल शहतूतों के

हम तो दर्शक जैसे
पहले थे अब भी हैं
चेहरे अख़बारों के
आते हैं जाते हैं

●

प्यादे से फ़र्ज़ी हैं
फ़र्ज़ी से प्यादे हैं
खेल-खेल में बदली
चाल के इरादे हैं
हम तो पैदल मोहरे
पहले थे अब भी हैं
लोग संगमरमरी—
बिसात पर बिछाते हैं

● ●

छोटी मछली जिसकी
पथरायी सूरत है
बड़ी मछलियों के घर
सगुन है मुहूरत है
हम तो गूँगे मुलजिम
पहले थे अब भी हैं
लोग हमें देखकर
सलीबें चमकाते हैं

● ● ●

सधे-बधे चेहरे हैं
व्यापारी दूतों के
बेमानी हैं जंगल
मीठे शहतूतों के
रेशम के कीड़े हम
पहले थे अब भी हैं
लोग हमें उलझा कर
धागे सुलझाते हैं

□

आकृतियाँ जाने कैसी

आकृतियाँ जाने कैसी-कैसी दिखती हैं
फिर चश्मे का नम्बर ग़लत हो गया शायद

●

एक सान्ध्य-जीवी अकुलाहट
मुझको तनहा पा जाती है
दिल की धड़कन सिगरेटों के
गोल धुएँ तक आ जाती है
जाड़े के मौसम में भी इस तरह पसीना—
अब तक का आडम्बर गलत हो गया शायद
फिर चश्मे का नम्बर गलत हो गया शायद

● ●

आँखों के आगे तिलिस्म का --
गलियारा बढ़ता जाता है
बोध निरर्थकता का
शब्दों को उल्टा पढ़ता जाता है
बहुत पुरानी एक डायरी हाथ लगी है
जिसका अक्षर-अक्षर ग़लत हो गया शायद
फिर चश्मे का नम्बर गलत हो गया शायद

● ● ●

अग्नि-कोण पर खंजन बैठा
जैसे मेरी अगवानी को
असमय बूढ़े-बच्चे से दिन
तरस गये हैं नादानी को
जिस जहाज़ पर भव-समुद्र में मैं उतरा था
उस जहाज़ का लंगर ग़लत हो गया शायद
फिर चश्मे का नम्बर गलत हो गया शायद

□

हम ऐसे सम्पर्क-सूत्र से

हम ऐसे सम्पर्क-सूत्र से जुड़े रहे आजीवन जिसमें
सम्प्रेषित होने से पहले कुछ सम्वाद छूट जाते हैं
●

केवल अन्तराल रचती हैं घाटी में गूँजी आवाजें
दो शिखरों के बीच खुले नभ को बाँधें तो कैसे बाँधें
जब भी नियम बना है कोई कुछ अपवाद छूट जाते हैं
● ●

अलग-अलग द्वीपों के मोती अलग-अलग सीपों के पहरे
दो अतलान्त छोर पर जैसे वैकल्पिक सम्बोधन ठहरे
निर्णायक क्षण आये भी तो कुछ प्रतिवाद छूट जाते हैं
● ● ●

भोजपत्र का वन है जिसके आत्मदाह की आँच कठिन है
मोम हो गये हिरन क्षणों के कोई, और कुलाँच कठिन है
इनको रूपान्तरित करें तो कुछ अनुवाद छूट जाते हैं
हम ऐसे······

□

कुछ ट्रेन ऐसी भी

कई बार टूटे हैं एक बार और सही

●

यदि कोई मोहपाश काम नहीं आये तो
रेशे-रेशे होकर बिखर-बिखर जाये तो
बेवजह हवाओं में गाले मन्दारों के,
कई बार फूटे हैं एक बार और सही

● ●

परिचय अकर्षण की, स्नेह की समर्पण की
कितनी मुद्राएँ हैं छोटे से दर्पण की
निष्ठुर हैं चंचल छायाएँ तो कई प्यार—
कई बार झूठे हैं एक बार और सही

● ● ●

कुछ ट्रेनें ऐसी भी द्रुतगामी होती हैं
जो शहरों से शहरों के रिश्ते ढोती हैं
जिनके आगे हम हैं स्टेशन छोटे तो
कई बार छूटे हैं एक बार और सही

□

कितना खलता है

कितना खलता है
अपने में तिल-तिल घटना
तट की चट्टानों-सा
धीरे-धीरे कटना

●

बर्फ के पहाड़ों-सा
क्रमशः हल्का होना
जल से आहत होने पर भी—
जल का होना
आँटे की गोली-सा
मछली-मछली बँटना
कितना खलता है

● ●

चुभते एहसासों से
बचने-कतराने में
झरबेरी से उलझी
सुबहें सुलझाने में
केले के पत्ते-सा
रेशे-रेशे फटना
कितना खलता है

● ● ●

छूट गई ट्रेनें जों—
उनकी धुँधली कतार
डूब रही नब्ज़—
लौट आने का इन्तज़ार
बूढ़े तोते-सा
भूले सम्बोधन रटना
कितना खलता है

□

इतने थोड़े जल में

कैसे हम काँच के घरौंदे में रहते
ठेस कहीं लगने का भय कितना सहते

●

इतने थोड़े जल में
ऐसी रंगरलियाँ
हम न हुए शीशे के—
ज़ार की मछलियाँ
सबकी अपनी बोली
किससे क्या कहते
कैसे हम काँच के घरौंदे में रहते

● ●

लोगों को मिलती है—
नींद बिना माँगे
लेकिन आदत अपनी
जागे तो जागे
वर्ना हम भी
सीधी धारा में बहते
कैसे हम काँच के घरौंदे में रहते

● ● ●

कभी तो मिले होते
वृक्ष हम अभागे
साँसों की धूल बनी
आँधी के आगे
ढहते भी तो—
केवल एक बार ढहते
कैसे हम काँच के घरौंदे में रहते

□

कंचनमृग आगे मत पूछना

कंचनमृग आगे मत पूछना
पर्णकुटी छूटी तो कैसे

●

सोचा था अपनी सीमा में भी
चन्दन का धर्म बहुत होता है
भूमि-शयन का भी अपना सुख है
कोई मृगचर्म बहुत होता है
जन-अरण्य आगे मत पूछना
पंचवटी रूठी तो कैसे

● ●

रत्न जड़े मुकुट ले गये मुझसे
सुखनिद्रा स्वप्न की अभय की
सूख रहे होठों तक आयी है
एक और प्यास दिग्विजय की
अश्वमेध आगे मत पूछना
सीता है झूठी तो कैसे

• • •

बाहर का युद्ध जीतने पर भी
भीतर निष्प्राण हुए जाना
कितना खलता है पुष्पक रथ पर –
दिशाहीन, वाण हुए जाना
सरयू जल आगे मत पूछना
प्रत्यंचा टूटी तो कैसे

□

फूले जब वन-पलाश

अनायास कोई धुन होठों तक आई है
एक साथ कई गीत हवा उठा लाई है
●

कसक किसी कथा में खो गई सुई-सी है
खोजें तो मिले नहीं, लेटें तो चुभती है
साहस की सीढ़ी भी फिसल-फिसल जाती है
साँस के धरातल पर कितनी चिकनाई है
● ●

जी होता नयनों से किरणों के फूल चुनें
मिट्टी की मूरत भी हो तो कुछ कहें-सुनें
सन्नाटे में जब भी आहट-सी आई है
मुड़कर देखा तो अपनी ही परछाईं है
● ● ●

बाहर से जुड़ा किन्तु भीतर खण्डित उथला
फ़सलों के बीच चढ़ा मैं धोखे का पुतला
पतझर के दिन तो जैसे-तैसे बीत गये
फूले जब वन-पलाश आँखें भर आई हैं

□

गोताखोर समय के आगे

गोताखोर समय के आगे याचक होकर जाना कैसा
अतल सिन्धु के मोती होकर बैठे तो पछताना कैसा ।

●

खाली चौदह रत्नों के घर सतत सिन्धु-मन्थन में जीना
दरकी सीपी की दीवारों से रिसते खारे जल पीना
इतना अन्तर्ज्वार मिला तो कोई और ठिकाना कैसा ।

● ●

बादल की आँखों में आये तो बादल का दुःख आधा है
लेकिन सीपी की पलकों में स्वाति बूँद की मर्यादा है
कोई सीमा-रेखा हो तो आगे और बहाना कैसा ।

● ● ●

यह अर्जित परिवेश स्वयं का अवरोधक हैं तरह-तरह के
भारी इतने हो तुमको क्या छू पायेंगे ज्वार सतह के
फिर निःसंग छूट जाने का कोई डर बचकाना कैसा ।

● ● ● ●

यूँ तो हार नौलखा भी हैं सागर छूट गये हैं जिनके
लेकिन चुभती है मंजूषा, भेद खुले जब उजले दिन के
जल-थल का संसार अलग है दोनों को उलझाना कैसा।

□

रेंगती हवायें

रक्त-दान में जिनके लहू काम आये
झेल रहे धमनी में रेंगती हवायें

●

मौत सरक आई है क्रमशः सिरहाने
धोखे भी बचे सिर्फ आने-दो आने
शोक-वस्त्र पहन रही नर्तकी प्रथायें

● ●

'फ्लैश-गन' चमकती हैं तो चेहरे चमके
झूल रही दो बाँहें झूल रहे तमगे
जिन पर उत्कीर्ण हैं दधीचि की कथायें

● ● ●

शतरंजी चालों के तेवर हैं सादे
फर्जी की चाल चलें कल तक के प्यादे
बचे-खुचे गोट नियम खेल के निभायें

□

कन्धे बैठी रात पूस की

कन्धे बैठी रात पूस की
घुटने-घुटने जल होता है
धोबी देख रहा है दीपक
आगे राजमहल होता है

•

ठकुरसुहाती और चुटकुलों से
दरबार भरा रहता है
दीमक की कुर्सी उसको
जो दस्तावेज़ खरा रहता है
प्यादे से चालें वज़ीर की
नकली खेल असल होता है

• •

देव-असुर संयुक्त हो गये
देवासुर संग्राम नहीं है
पौरुष और पराक्रम वाले
इन्द्र तुम्हारा काम नहीं है
उनका हाल वैष्णव जानें
जिनके कंठ गरल होता है

● ● ●

एक मशाल क्रान्ति की चलकर
उत्सव की रोशनी हो गई
बिजली अपनी सड़क भूल कर
अब बातों की धनी हो गई
सिर्फ़ नुमाइश में रखने को
रोटी और कमल होता है
घुटने-घुटने जल होता है

● ● ● ●

यह ऐसा विवाह-मण्डप है
जिसमें केवल वधू-पक्ष है
प्रायश्चित विकल्प रचने में
एक पुरोहित धर्म-दक्ष है
बूढ़े तरु से ब्याही कन्या का
अहिवात अचल होता है

□

पापा ! यह किसका बेटा है

वह बेजान थका-सा बच्चा
जाने क्या सोचा करता है
झोली में कूड़े समेट कर
आसमान देखा करता है
पापा ! यह किसका बेटा है
मेरा बच्चा पूछ रहा है

●

घंटा बजता है स्कूल में
यह सड़कों पर आ जाता है
विद्यालय जाती गाड़ी को
देख-देख ललचा जाता है
पाँवों के पंजे उचका कर
अपना क़द ऊँचा करता है
पापा ! यह किसका बेटा है

● ●

इसके बाल बिखर कर
सूखी सरपत से फैले रहते हैं
उत्सव त्यौहारों पर भी
इसके कपड़े मैले रहते हैं
धूल और माटी में
खोई किस्मत को खोजा करता है
पापा ! यह किसका बेटा है ?

● ● ●

चली हवायें गर्द किरकिरी
आँखों में बिखरा जाती हैं
यह पंछी के गीत सुने तो
चिड़ियाँ भी कतरा जाती हैं
लोगों ने कुत्ते छोड़े हैं
कुत्तों से खेला करता है
पापा ! यह किसका बेटा है ?

● ● ● ●

इनकी तस्वीरें लेकर
जब पत्रकार कोई जाता है
यह जैसा है अखबारों में
वैसा चित्र नहीं आता है
बाल-दिवस क्या होता है
यह लोगों से पूछा करता है
पापा ! यह किसका बेटा है ?

● ● ● ● ●

चूल्हा नहीं जला था घर में
रात कलह में बीत गई थी
खाली जेब पिता लौटा था
माँ दु:ख ही दु:ख रीत गई थी
खोई माँ को यह रेलों की
पटरी पर खोजा करता है
पापा ! यह किसका बेटा है ?

□

उस सूखे पत्ते ने

उस सूखे पत्ते ने मुझको कई बार झकझोर दिया है
जिसने आँधी को नकार कर पूरी उमर हवा को दे दी।

●

धीरे-धीरे रंग उड़ गये मटमैले हो गये कलेवर
उभरी हुई नसें चेहरे की झेल रहीं मौसम के तेवर
सुविधा, जैसे चातक के घर एक बूँद स्वाती की आयी
जिसको उसने स्वाभिमान के जलते हुए तवा को दे दी।

● ●

प्रश्न-चिह्न हो गई ज़िन्दगी जैसे दुर्दिन की पहुनाई
ढेला भी यदि मित्र हुआ तो बरखा को यह बात न भायी
फिर भी जिसने उकठे तन में छिपी हुई कोंपल की लाली
डाली पर ठहरे प्रवाल के खिलते हुए रवा को दे दी।

● ● ●

खण्ड-खण्ड टूटे हैं, लेकिन चाल वही पहले जैसी है
वही फ़कीरी फ़ाक़ामस्ती, नहले पर दहले जैसी है
मन तो रोग-मुक्त था लेकिन तन में पैठ गई सीलन को
किन्हीं दोस्तों के हाथों की साज़िश भरी दवा को दे दी।

● ● ● ●

पिघलीं गन्धक की चट्टानें महाप्रलय के निर्झर फूटे
वह कोई निष्काम संत था जिसके मंत्र हो गये झूठे
जो देवी के युगल चरण पर रक्त-पुष्प की तरह बिछ गया
लेकिन अपनी सिद्धि अभय की फूले कुसुम-जवा को दे दी
जिसने आँधी को नकार कर पूरी उमर हवा को दे दी।

□

इतने अर्द्ध विराम

ढाई आखर की बोली में
इतने अर्द्ध विराम न होते
तुम इतने सन्तुलित न होते
हम इतने निष्काम न होते

●

प्रौढ़ा उत्सव-जीवी रातें
'काकटेल' की बहकी बातें
अपना दर्द भूल बैठी हैं
पंखहीन तोतों की पातें
सूनी आँखें अगर न होतीं
दृश्य-नयन अभिराम न होते

● ●

अभिनय की मारी मुद्रायें
जगह बनाती दायें-बायें
सीधे-सादे सम्वादों को
कहीं गिरायें कहीं उठायें
साहस होता तो मंचों के
ये सुखान्त परिणाम न होते

● ● ●

हाट और बाज़ार न होते
तो ये कच्चे रंग न होते
छापा-तिलक अनेक न होते
तरह-तरह के ढंग न होते
चर्म कहीं कस्तूरी-मृग के
वैरागी के नाम न होते

□

बहाने अभयारण्य के

अग्नि परीक्षा में है मोम का खिलौना
दावानल देख रहा भोला मृगछौना

●

घोटुल के रस भीने चन्दन-वन छूटे
गले मिले वृक्ष और साथ-साथ टूटे
रिश्ते सम्बन्ध हुए काठ का भगौना

● ●

जलता वन छोड़ गया जंगल का राजा
बुझी राख पर है जागीर का तकाज़ा
माँ बिसूरती खोये पूत का डिठौना

● ● ●

जन-अरण्य में अभयारण्य के बहाने
जंगल के राजा के हैं कई ठिकाने
मेमना सरीखा है आदमक़द बौना
दावानल देख रहा भोला मृगछौना

□

रास्ते जब से मिले हैं

पार्श्व के संगीत की
सम्भावनायें तो गई हैं
असंगतियाँ मंच की
जैसे नियामक हो गई हैं

●

अब न कोई प्यार की ऊष्मा
नहीं संकल्प के क्षण
अधखुली पलकें न छूते हैं
कहीं भी रेत के कण
हम हुए 'रोबोट' जब से
भंगिमायें खो गई हैं

● ●

किसी गुज़री ट्रेन की—
धड़कन न कोई थरथराहट
नहीं कोई रेशमी—
सम्भावना की सरसराहट
ले गयीं सम्वेदना भी
अपेक्षायें जो गई हैं

● ● ●

हो गये कस्बे शहर तो
घरों के आकार बदले
हाँफते सम्बन्ध बूढ़े
तिथि गई, त्यौहार बदले
संगमरमर की सड़क पर
यात्रायें खो गई हैं

□

लेकिन ये पन्ने तो

पृष्ठ डायरी के यों उड़े-उड़े जाते हैं
पाँव बँधे पंछी ज्यों पंख फड़फड़ाते हैं

●

पन्ने जिन पर अंकित तिथियाँ त्यौहार हैं
मौसम के रंग-महल, ऋतुओं के द्वार हैं
जिनकी धड़कन में कचनारों के वन सोये
नदी एक पथ भूली, बादल खोये-खोये
पंक्ति बाँध कर जैसे हंस उड़े जाते हैं
झील बीच जोड़े कपोत के नहाते हैं

● ●

शायद हम शब्दों के दर्पण में सही दिखें
आने वाले कल के नाम एक पत्र लिखें
फिर से सन्ध्या की बिखरी अलकें सुलझा दें
फूल शब्द-बिम्बों के जूड़े से उलझा दें
दिन भर का कोलाहल पृष्ठों को सौंप दें
कागज़ ही तो मन का भार उठा पाते हैं

● ● ●

कुम्हलाये फूलों की खुशबू बनकर बिखरे
किसी अनागत के स्वागत में गूँथे गजरे
आईं जो तिथियाँ मुझको छूकर निकल गईं
हाथों में आई मछली जैसे फिसल गई
शेष, वर्ष के अन्तिम दिन भी अब आधे हैं
लेकिन ये पन्ने तो सादे-सादे हैं

□

इतने नीचे तापमान पर

सम्बन्धों के ठंडे घर में
वैसे तो सब कुछ है लेकिन
इतने नीचे तापमान पर
रक्तचाप बेहद खलता है

●

दिनचर्या कोरी दिनचर्या
घटनायें कोरी घटनायें
पढ़ा हुआ अख़बार उठाकर
हम जैसे बेबस दुहरायें
नाम-मात्र को सुबह हुई है
कहने भर को दिन ढलता है
इतने नीचे तापमान पर
रक्तचाप बेहद खलता है

● ●

शीत-ताप अनुकूलित घर में
मौसम के प्रतिमान ढूँढ़ते
आधी उमर गुज़र जाती है
प्याले में तूफान ढूँढ़ते
गर्म ख़ून वाला तेवर भी
जैसे सिर्फ़ हाथ मलता है
रक्तचाप बेहद खलता है

● ● ●

सजे हुए दस्तरख्वानों पर
मरी भूख के ताने-बाने
ठहरे हुए समय-सी टेबुल,
टिकी हुई बासी मुस्कानें
शिष्टाचार डरे नौकर सा
अक्सर दबे पाँव चलता है
इतने नीचे तापमान पर
रक्तचाप बेहद खलता है

□

लोगों की आँखों से बचकर

नकली अष्टधातु की मुँदरी
नकली लगे नगीने
फिर भी जी डरता है कोई
हमसे इन्हें न छीने

●

गमलों में पेड़ों की दुनिया
छत पर बाग़-बगीचे
किसे पड़ी है जो यह सोचे
क्या है जड़ के नीचे
काट रहे हमको ज़मीन से
चौखट, सीढ़ी, ज़ीने

● ●

हमें मिली है सिर्फ़
मुखौटों में रहने की आदत
सुख-दुःख का सम्वाद
एक पिच पर कहने की आदत
घर के कमरों के हैं
अपने शिष्टाचार करीने

● ● ●

अपना चेहरा खो बैठे हैं
हम पहचान बनाते
रेशम के पैबन्द लगाकर
टाट खड़े पछताते
पर्दे चाहे जैसे भी हों
सारे पर्दे झीने

● ● ● ●

हमें मिले हैं बिना शहद के
मधुमक्खी के छत्ते
हमें बाँधते ताश-महल के
बेदम हल्के पत्ते
ढलते दिन की सीढ़ी पर हैं
घड़ियाँ, दिवस, महीने

● ● ● ● ●

हम उनके समानधर्मा हैं
जिनकी खोई भाषा
मिट्टी में झूठी चाँदी-सी
चमकी जिसकी आशा
लोगों की आँखों से बचकर
जिसने कंकड़ बीने

□

वही दुधमुही हँसी

अपना खोया बचपन ढूँढ़ रही एक उमर
कभी-कभी भूले-भटके जो मिल जाती है
प्रायः बचते-बचते मुझसे टकराती है

●

कुशल-क्षेम पूछ रही बीत गई वयःसन्धि
मुस्कानों के पीछे दबी कई मनो-ग्रन्थि
उसके कम्पित हाथों से जो झोली छूटी
खुशबू से भरी हुई कोई शीशी टूटी
बिखरी लड़ियाँ कितनी सूखे जयमाल की
बतरस-लालच रखी मुरली गोपाल की
टूटे नूपुर, सोई ऋतुओं के नाच के
मोती से चमक रहे सौ टुकड़े काँच के
इन बिखरी चीज़ों को धूल से उठाती है
अनायास करुणा की नदी छलछलाती है

● ●

सूरज के रथ में मैं जुते हुए घोड़े-सा
खुली पीठ पर गहरे उगे हुए कोड़े-सा
भार टिकाये दिन का कन्धों के जोड़ पर
घबरा कर रुका कभी जब अन्धे मोड़ पर
वही दुध-मुँही हँसी अचानक मिल जाती है
हल्के चाँटे मुँह पर मार खिलखिलाती है
एक हवा का झोंका, आया झकझोर गया
सूखते पसीने के सिहरन में बोर गया
चटकते गले में जो प्यास थरथराती है
दूर कहीं जल बनकर चमक-चमक जाती है

□

परछाईं छज्जे की

परछाईं छज्जे की पसर गई अँगना
पर्व-कथा सुनता है हाथों का कँगना

●

भूल गये रस्ते "मनिआडर" के पैसे
सपने आते हैं जाने कैसे-कैसे
पिंजड़े से उड़ा सुआ हिलता है टँगना

● ●

शंका से भरी सास की बूढ़ी आँखें
घूरती रहीं कच्चे घर की सूराखें
ऐसे में लुक-छिपकर होंठों का रँगना

● ● ●

किस्से हैं राजा, रानी के किस्से
नदी और चुल्लू भर पानी के किस्से
पर्णकुटी तक आया सोने का हिरना

□

बे-मौसम ठंढ

बे-मौसम ठंढ के महीने
ठिठुरन से काँपती लतायें
उग आए शीत के पसीने

●

बर्फ़ की तरह जमी हुई सुबह
टूट गई है जिसकी रीढ़
सूर्य की प्रतीक्षा में बैठी है
डरे हुए लोगों की भीड़
चुभती हैं फटी आस्तीनें

● ●

धुंध ने कुहासे ने बाँट लिए
आँगन की खुली हुई धूप
अच्छी ऋतुएँ देकर लौट गईं
यादों के ढहते स्तूप
कसी मुट्ठियों से जैसे कोई
संकल्पों के अक्षत छीने

● ● ●

ऐसा कुछ नहीं जो अलाव-सा
जले और हाथ की नसें पिघलें
बनवासी तोतों के सौ जोड़े
छत की मुण्डेरें छूकर निकलें
सड़कों पर लोग फिर दिखें जैसे
कंगन में जड़े हों नगीने

□

अज्ञात-वास

हार कर सब जुए के दाँव पर
हो गई निष्प्राण-सी अज्ञातवासी देह

●

यह विराट-नगर जहाँ की शर्त है,
आँख के जल में न गहराये अकेली शाम
लोग कितने अजनबी हैं सोच कर
आ न जाये होंठ पर कोई सुपरिचित नाम
हो न जाएँ हम स्वयं की दृष्टि में संदेह

● ●

अंग पर तो अमिट हो कर रह गये
खो गये जो आमरण उनके अनेक निशान
जिन्हें ढँकते रह गये हम इस तरह
छद्म-वेषी हो गई है सहज-सी मुस्कान
सहन भी नहीं होता निष्कपट निर्मल नेह

● ● ●

अब कहीं कोई कमल खिलता नहीं
रेत होकर रह गये निर्जल नदी के कीच
द्वैत-वन की धधकती दावाग्नि ज्यों,
आ गई है बर्फ़ ओढ़े जंगलों के बीच
तौलते हैं हमें काया-कल्प के अवलेह
हो गई निष्प्राण-सी अज्ञातवासी देह

□

अंतिम वसन्त

कुम्हलाये हैं बन्दनवार
चलो चलें लौट चलें
गहरी ख़ामोशी के पार
चलो चलें लौट चलें

●

नीची कक्षाओं ने ऊँची कक्षा को
विदा गीत भेंट किये विद्यालय बन्द हुए
पेड़ों पर हिलती हैं पत्तों की रूमालें
दूर-दूर तक उठते कोलाहल मन्द हुए
सूने-सूने छात्रावासों के आँगन में
भूले से फूले कचनार
चलो चलें लौट चलें

● ●

धुनिये की धुनकी-सी हवा धुन रही है
सित पाँखी रूई उड़ी सेमल के फल फूटे
कटी पतंगों जैसे बेबस आकाश-कुसुम
जाने किस जल डूबें, जाने किस थल छूटें
ऐसे अस्थिर क्षण भी टटके, टह-टह फूले

टेसू के गुनगुने खुभार
चलो चलें लौट चलें

□

जल भरे कटोरे में

भोर हुआ, जल भरे कटोरे में
छायायें तैर गईं
मेरी कृश काया को उगता दिन नाप गया
मैं जैसे काँप गया

●

चेहरे पर चमक रहे अंगराग
पानी की एक बूँद धो गई
किसी विदूषक की बेबात हँसी
होठों के बीच कही खो गई
कितना दयनीय करुण होता हूँ
मैं जब भी अपने को भाँप गया
मैं जैसे काँप गया

● ●

लावारिस बच्चों सा देख रहे हैं
मुझ को आँगन घर गलियारे
धूप बुन रही गुप-चुप खिड़की के पास बैठ
सम्भावित अँधियारे
गीतों के रंगमहल, उफ़। इतने ऊँचे
सोचा भी तो हाँफ गया
मैं जैसे काँप गया

● ● ●

आदमी वही हूँ जिसको कहिये
गंजे को मिलते नाखून नहीं
आदमी वही हूँ लेकिन ऐसी बात है
काटो तो खून नहीं
शिरा-शिरा जम गया रुधिर जैसे
छाती पर लोट-लोट साँप गया
मैं जैसे काँप गया

□

मेमने यातना-शिविर के

रक्त-हीन चेहरे पर संयम की--
शिकन बन गई गहरी चोट
पूरा परिवेश बदल देते हैं
आतंकों के लम्बे कोट

•

अस्पताल में खिड़की पर गमले
हँसता है दुधमुहाँ गुलाब
मौत की घड़ी गिनने वाले दिन
हो जाते और बेनकाब
निरालम्ब रहना भी मुश्किल है
दुखती है तकिये की ओट

• •

फटी आस्तीनों के स्वेटर सी
दिखती है अपनी औकात
जिसे पहनकर नंगी दिखती है
कुहनी पर टिकी हुई रात
हर आहट खटका बन जाती है
रेंग रही है दिल की खोट

• • •

घायल ट्यूबों वाले पहिये पर
ठहरा है अपना संसार
कभी-कभी घंटों खल जाती है
हल्के से कंकड़ की मार
चुहल ले रहीं शतरंजी चालें
हतप्रभ हैं पिटे हुए गोट

• • • •

यातना-शिविर में हम मेमने
झेल रहे शैतानी दाँव
जैसे बेबस चींटे को बच्चे
बैठायें कागज़ की नाव
एक खेल जल-समाधि बन गया
मजबूरी काट रही होठ
पूरा परिवेश बदल देते हैं
आतंकों के लम्बे कोट

□

ग़ज़ब की हवा है

लोगों को जहाँ-तहाँ छोड़ती
जिसको जैसा चाहे मोड़ती
ग़ज़ब की हवा है

●

बिखर गये तिनके जो घर के
जानें क्या चूजे बेपर के
हल्के झोंके भी दे जाते हैं
कई एक नाग-पाश डर के
फूलों की पंखड़ी मरोड़ती
कच्चे फल डाली से तोड़ती
ग़ज़ब की हवा है

● ●

ऋतु वक्ताओं से इठलाती
'बैरोमीटर' को झुठलाती
बच्चों को दहशत में पाकर
ज़ोरों के कहकहे लगाती
भूत को भविष्य को निचोड़ती
अख़बारों में ख़बरें जोड़ती
गज़ब की हवा है

● ● ●

आँखों का सन्तुलन सँभाले
चश्मे भारी फ्रेमों वाले
मौसम पर बोलने चले तो
होठों पर हिलते हैं ताले
लगी शुतुरमुर्गों में होड़-सी
मिली वही नस्ल रेत ओढ़ती
गज़ब की हवा है

□

सन्नाटे से सन्नाटे तक

मुट्ठी में भरे हुए नीला आकाश
सन्नाटे से सन्नाटे तक
दौड़ता रहा
खोखले क्षणों का एहसास

●

लोक-कथा का कोई राजकुँवर
कंचन-मृग के पीछे जंगल में बहक गया
और किसी नरभक्षी दानव को
मानुस-तन का जैसे सोंधापन महक गया
एक कीटभक्षी पौधे उलझी तितली
झेल रही फूलों के सधे बाहुपाश

● ●

सरसों-सा उगते जो हाथ पर
टूट गये वे सम्भावित क्षण हल्के-हल्के
पत्थर पर दूब की जगह—
रंगों की परिधि तोड़ते—बिरवे काजल के
और इस पसीज रही मुट्ठी से पारे सा
फिसल-फिसल जाता है नीला आकाश

□

सोना मढ़े दाँत के नीचे

जब भी किसी नये साँचे म
हम अपने को ढाल रहे हैं
सोना मढ़े दाँत के नीचे
जैसे कीड़े चाल रहे हैं

●

गंगा-जमुनी चमक दाँत की
सिरज रही उन्मुक्त ठहाके
ईर्ष्या की चंचल आँखों में
काजल से हैं चिह्न धुआँ के
विज्ञापन परिचय के सिगरेटों के
धुएँ उछाल रहे हैं
सोना मढ़े दाँत के नीचे
जैसे कीड़े चाल रहे हैं

● ●

ये सारे सन्दर्भ स्वयं में
अर्थ-हीन हो गए जतन के
जैसे रत्न जड़ी तलवारें
शयन-कक्ष में राजभवन के
हीन ग्रन्थियों के विष-रस को
कंचन के घर पाल रहे हैं
सोना मढ़े दाँत के नीचे
जैसे कीड़े चाल रहे हैं

● ● ●

अपने को अभिव्यक्त न कर
पाने का दर्द और बढ़ जाता
जब कोई मुस्कान व्यथा की
सोने का पानी चढ़ जाता
राजा के लक्षण हों जिसमें
हम ऐसे कंगाल रहे हैं
सोना मढ़े दाँत के नीचे
जैसे कीड़े चाल रहे हैं

□

तिनकों के नखरे

डूबते हुए भी हम तार-तार बिखरे
आसमान छूते हैं तिनकों के नखरे

•

अब रहस्य नहीं रहे सम्मोहन गहरे
पानी के ऊपर जो पुष्प-सेतु ठहरे
जल परियाँ मृग-मरीचकाओं के घघरे
आसमान छूते हैं तिनकों के नखरे

• •

जोड़ती रहीं रिश्ते दर की दीवारें
टूटे बाज़ारों की टेढ़ी मीनारें
हम सिक्के मूल्य-हीन जगह-जगह नकरे
आसमान छूते हैं तिनकों के नखरे

• • •

खुले हाथ हैं कच्चे नास्तिक के ईश्वर
बर्फ के पहाड़ हुए, हम हल्के होकर
अपने ही अपने में, अपने को अखरे
आसमान छूते हैं तिनकों के नखरे

● ● ● ●

सिन्धु के मरुस्थल में उठी हुई आँधी
शुतुरमुर्ग बनकर जिन लोगों ने बाँधी
उनका अवचेतन भी है मेरे बखरे
आसमान छूते हैं तिनकों के नखरे

□

नया साल आया है

खाली जेबों में जाली सिक्के
अपने अवमूल्यित व्यक्तित्व का
फिर खयाल आया है
नया साल आया है।

●

वेगवती पर्वत की नदी और
लुढ़क रहे पाहन से हम
लहरें उद्दाम तोड़ देती हैं
कहीं पाँव जमने का भ्रम
फिर प्रतिक्षण कटने को
फिर तिल-तिल घटने को
नया ढाल आया है।
नया साल आया है।

● ●

साँसों में रची-बसी है अब भी
पिछली तारीखों की गन्ध
जो पूरे नहीं हुए साथ हैं
कितने वादे कितने छन्द
जिनके संग जलने का
या जिनको छलने का
फिर सवाल आया है
नया साल आया है ।

• • •

सधने से पहले ही सधे तीर
लक्ष्यहीन हाथों से छूट गये
बाहर फूलों के ये गुलदस्ते
मेज पर लगाते ही सूख गये
लेकिन मौसम ताज़ा
एक चोर-दरवाजा
फिर निकाल लाया है
नया साल आया है ।

□

सुविधा की सूली पर

एक गोदनामे पर बैठा, मैं हूँ दत्तक-पुत्र समय का
जिसको बहुत दिनों का भूला अपना रक्त याद आता है

●

अब जो रक्षक थे मेरे
वे प्रतिमानित अस्त्र खो गये
ज़रीदार कुर्ते के नीचे
फटे हुए उप-वस्त्र हो गए
जिनको ढकने में अब तक का
बीता वक्त याद आता है
अपना रक्त याद आता है

● ●

वह अभाव जो इतनी बड़ी
बिसंगति का आधार हो गया

वात्सल्य था निर्वंशी का
मैं जिसका आहार बन गया
कृतज्ञता का ताज और
सूली का तख्त याद आता है
अपना रक्त याद आता है

• • •

कोई मृत शिशु जो अब भी—
माँ की आँखों में बसता है
किसी गाय के सूखे थन जो—
बनकर नेह-विन्दु रिसता है
ग्वाले के घर मुई खाल का
बछड़ा सख्त याद आता है
अपना रक्त याद आता है

☐

पीहर का बिरवा

पीहर का बिरवा
छतनार क्या हुआ
सोच रहीं लौटी
ससुराल से बुआ

●

भाई-भाई फ़रीक
पैरवी भतीजों की
मिलते हैं आस्तीन
मोड़ कर कमीजों की
झगड़े में है महुआ
डाल का चुआ

● ●

किसी की भरी आँखें
जीभ ज्यों कतरनी है

किसी के सधे तेवर
हाथ में सुमिरनी है
कैसा-कैसा अपना
ख़ून है मुआ

• • •

खट्टी-मीठी यादें
अधपके करौंदों सी
हिस्से बँटवारे में
खो गये घरौंदों की
बिच्छू-सा आँगन
दालान ने छुआ

• • • •

पुश्तैनी रामायन बँधी
हुई बेठन में
अम्मा ज्यों जली हुई
रस्सी है ऐंठन में
बाबू पसरे जैसे
हार कर जुआ

• • • • •

जोड़ रही हैं उखड़े
तुलसी के चौरे को
आया है द्वार का
पहरुआ भी कौरे को
साझे का है
भूखा सो गया सुआ
सोच रहीं लौटी
ससुराल से बुआ

□

एक बूँद द्रवित किरण

एक बूँद द्रवित किरण सँभल नहीं पाती है
नयन के कटोरे से छलक-छलक जाती है।

●

शीशे की मेहराबें, काँच के मकानों से
सीपिया सुबह उतरी, दर्पणी ढलानों से
जितनी ही सँभली उतनी ही बिछलाती है
नयन के कटोरे से छलक-छलक जाती है

● ●

तितली के पंख पहनकर हँसती एक कली
निर्मल जल में जैसे रंग घोलती मछली
जितनी ही डूबी उतनी ही उतराती है
नयन के कटोरे से छलक-छलक जाती है

● ● ●

मैं भी हूँ लेकिन मेरे भीतर भी कोई है
चट्टानों के नीचे नदी एक सोई है
कभी-कभी तो जैसे सौ-सौ बल खाती है
नयन के कटोरे से छलक-छलक जाती है।

□

क्या करें

इस तरह मौसम बदलता है
बताओ क्या करें ?
शाम को सूरज निकलता है
बताओ क्या करें ?
●
यह शहर वह है कि जिसमें
आदमी को देख कर
आइना चेहरे बदलता है
बताओ क्या करें ?
● ●
आदतें मेरी किसी के
होंठ की मुस्कान थीं
अब इन्हीं से जी दहलता है
बताओ क्या करें ?
● ● ●

दिल जिसे रोने में भी
हँसने की आदत थी, वही
अब तो मुश्किल से बहलता है
बताओ क्या करें ?

● ● ● ●

इस तरह पथरा गईं आँखें
कि मुझको देख कर
एक पत्थर भी पिघलता है
बताओ क्या करें ?

● ● ● ● ●

दोस्त मुझको देख कर
विगलित हुए तो सह्य था
दुश्मनों का दिल बदलता है
बताओ क्या करें ?

□

आहत अनुबन्धों से

आहत अनुबन्धों को एक और प्रण मिला
अपमानित लमहों को एक और क्षण मिला
●

सूखते गले में आवाज़ें प्यासी-प्यासी
रक्तचाप पर तनी शिरायें प्रत्यंचा सी
ख़ौफ़नाक रातों को एक जागरण मिला
अपमानित लमहों को एक और क्षण मिला
● ●

खिंची मुट्ठियाँ हुईं निढाल सोचते हुए,
शिथिल अंग रक्त का उबाल सोचते हुए
अनहोनी भाषा को एक व्याकरण मिला
अपमानित लमहों को एक और क्षण मिला
● ● ●

ठंढी रातें—ठिठुरे स्यार की प्रतिज्ञायें
निष्प्रभ हो गईं धूप में टूटी उल्कायें
मिथ्याचारों को फिर एक आचरण मिला
अपमानित साँसों को एक और क्षण मिला

□

काल के रथ की धुरी में

काल के रथ की धुरी में
दब गई निष्प्राण सी इन उँगलियों को
जेब में अपने छिपाये
गीत के हर पर्व पर हम मुस्कराये
किन्तु जैसे कहीं कोई है—
मुझे जो भाँपता है

●

अतिथि-गृह जो बहुत दिन से—
बन्द है उसको सजायें
वाद्य-यन्त्रों पर जमी जो धूल है उसको हटायें
सूख कर काँटे हुए जो फूल उनको भूल जायें
पुष्प-पात्रों में नये कुछ फूल कागज़ के लगायें

चोट से खण्डित हुए जो आइने उनको उठायें
और सूने चौखटे में एक ऐसा चित्र लायें
ज्यों अँधेरी रात के आकाश की नीहारिकायें
किन्तु ऐसे में कहीं पर
हाथ मेरा काँपता है

● ●

काँच से टूटे पड़े जो
विगत क्षण उनको सजायें
देखने वाले जिन्हें दुर्लभ कलाकृतियाँ बतायें
कुछ पुराने चित्र छाँटे
नये 'एलबम' में लगायें
जहाँ मस्तक पर न आएँ रक्तचाप भरी शिरायें
मोतियों की खोज में जो हाथ टूटे सीप आए
उन्हें कह दें बर्ष की उपलब्धियाँ, सम्भावनायें
कहकहों से कहकहों के दौर को आगे बढ़ायें
किन्तु भीतर और बाहर
मुझे कोई नापता है।

□

फुर्सत किसको

मिलते हैं साँचों में ढले हुए चेहरे
ये चिकने घड़े बूँद जल की क्या ठहरे

●

पीपल के कन्धों पर ऊँघते अमोले
छेड़कर हवा जिनकी जेब तक टटोले
आसमान है इनका पहरे-दर-पहरे

● ●

पाँव की जमीन गई कन्धा यारों का
सारा सन्तुलन गया सुखमय भारों का
लता दंश देकर नागिन जैसी लहरे

● ● ●

ऐसे तरु हैं बौने वृक्षों के गोती
जंगल में सुबह सिर्फ जिनके घर होती
ऋतु-पर्वों पर किसलय-ध्वजा बन फहरे

मिली-जुली मदिरा का मिला-जुला जादू
वन से मधुबन रचते पढ़े-लिखे बाबू
ललित कथा कहते हैं बहरों से बहरे

● ● ● ● ●

एक ही वज़न के हैं वादी-प्रतिवादी
सतही बातें सतही दुनियाँ के आदी
फुर्सत किसको उतरे पानी में गहरे

□

तुम ठहरे पर्वत

कहाँ-कहाँ आसमान—
बदलोगे बोलो
कौन सा वितान लिए—
निकलोगे बोलो

●

सम्वेदनहीन हवा
जमी हुई नदियाँ
इसी तापक्रम पर हैं
लोगों की छवियाँ
बर्फ के पठार
कभी पिघलोगे बोलो

● ●

काश उन्हें भी मिलता
जादुई अँधेरा
जो कंचन जंगा पर—
देखते सवेरा
लिखी हथेली पर—
क्या लिख लोगे बोलो

● ● ●

सैलानी लोगों का
वक्त कटे कैसे
खेल नये निकले हैं
'स्केटिंग' जैसे
तुम ठहरे पर्वत --
क्या फिसलोगे बोलो
कहाँ-कहाँ आसमान बदलोगे बोलो

□

खेल शुरू होता है

'खेल शुरू होता है' बोलती मशीन
फुटपाथों पर ठहरे हम तमाशबीन

●

शीत-लहर झेल रहे पसली के घाव
मौत जीत जाती है एक और दाँव
लोग दिखे नंगे तो कहते रसलीन
ढाके की मलमल के सूत हैं महीन
हम तमाशबीन

● ●

एक ख़ास फल है, कहने को है आम
आसमान छूते हैं गुठली के दाम
क़ीमत है काले घोड़े पर आसीन
सिर्फ़ आदमी बिकते पैसे के तीन
हम तमाशबीन

● ● ●

यह बैरगिया नाला और जुलुम-ज़ोर
नौ कत्थक के स्वामी तीन साधु-चोर
जिनकी साज़िश में हैं रागिनी-प्रवीण
भेद खोल देती है तबले की 'धीऽऽन'
हम तमाशबीन

● ● ● ●

लाल-लाल कोंपल से खिले नौनिहाल
प्रश्न-पत्र बनकर जब उगे डाल-डाल
हवा है कि साँप पाल रही आस्तीन
वृक्ष पाँव के नीचे ढूँढ़ते ज़मीन
हम तमाशबीन

☐

मौत के कुएँ में

सजा काटनी है यूँ मुँह ढक कर सोना
चार खूँट की चादर छोटा हर कोना

●

स्वगत कथ्य में जीना, सम्भाषण गढ़ना
दैवी मैना बन कर भाग्य-पत्र पढ़ना
एक जमूरा जैसा मजमे में होना

● ●

दर्शक-दीर्घाओं की दृष्टि से गुज़रना
मौत के कुएँ में हर रोज़ का उतरना
एक दृश्य बनने में अपने को खोना

● ● ●

रेल की पटरियों सा नित्य बिछे रहना
गुज़र गई ट्रेनों के अनुकम्पन सहना
केवल साधन बनकर घटनाएँ ढोना

वह जिसको कहते हैं

मिलता है जन-अरण्य
अन्तहीन वन
तन की सीमाओं में
बँधा हुआ मन

•

देखा है अपने को
दृष्टिहीन होते
हाथों से छूट उड़े
अन्तरंग तोते
आवाज़ें हैं जैसे
चलते हैं घन

• •

सधे हुए तेवर हैं
शब्दों के जाल
अपना क़द छोटा—
करने वाली चाल
साँप हुए जाते हैं
रस्सी के फन

● ● ●

अगला बेटा माँगे
या अगला बैल
वह जिसको कहते हैं
हाथों की मैल
रात में टहलता है
निरवंशी धन

□

टूटे शीशे वाली खिड़की

शीत-ताप अनुकूलित कमरे
अपने लिए बनाओ लेकिन
टूटे शीशे वाली खिड़की
मेरे नाम छोड़ते जाओ

●

इस खिड़की से जुड़े हुए हैं
धूप और बादल के नाते
उड़ती चिड़िया के पंखों की
हवा मिली है आते-जाते
क्षितिज अनागत के छूने का
तुमको पूरा हक है लेकिन
ये मेरी तीरथ की गलियाँ,
मेरे धाम, छोड़ते जाओ

● ●

बी। गये पावस के—
भीगे दिन की याद प्रगाढ़ हुई है
उजले केशों वाली बरखा
मन ही मन आषाढ़ हुई है
महानगर द्वारिकापुरी पर
तुमको पूरा हक है लेकिन
जमुना-तट बैठी मथुरा की—
भीगी शाम छोड़ते जाओ

● ● ●

जब भी भोली आँखों वाला
बच्चा कोई मुस्काता है
ढंग देखकर रंग बदलता
अपना लहू याद आता है
अन्तर्युद्ध भूल जाने का
तुमको पूरा हक है लेकिन
मेरे लिए चुनौती बनते
युद्ध-विराम छोड़ते जाओ

□

महाप्रलय में

आगामी कल छीने भी तो
सम्भावित पल रह जाते हैं
लाख हवा बहकाये लेकिन
भटके बादल रह जाते हैं

●

गाँवों तक जबड़े फैलाये
शहरों का इतिहास मिला है
जब अपनी ज़मीन पर ठहरे
पीपल को वनवास मिला है
गीत चुरा कर संथालों के
जब चलचित्र चले जाते हैं
कोई भूली वंशी की धुन
गुनते मादल रह जाते हैं

● ●

दौड़ दिमाग़ों की है दिल के—
हिस्से में कुछ नहीं बचा है
जब सावित्री सत्यवान के
किस्से में कुछ नही बचा है
जब अभिन्न सम्बन्धों में भी
भिन्न गणित की आ जाती है
नम आँखें प्रतिवाद करेंगी
भींगे आँचल रह जाते हैं।

● ● ●

ग्रन्थ जहाँ राजा के—
सिंहासन के इर्द-गिर्द रहते हैं
जब, जैसा राजा बोलेगा
टीका-भाष्य वही कहते हैं
महाप्रलय में वट-वृक्षों पर
कोई बाल-मुकुन्द बचा है
जो सूली पर भी सच बोलें
ऐसे निश्छल रह जाते हैं।

□

चौबारे तक आयी कालोनी

चौबारे तक आयी कालोनी
भीतर तक दहल गया गाँव
●

धूपी चश्मे पहने खिड़कियाँ
अभिमानी उजले 'बुलडाग'
पुष्प वाण साधती लतायें
छेड़ रही वैभव के राग
गुब्बारे उड़ा रही कालोनी
बच्चे सा मचल गया गाँव
● ●

जो थीं अम्मा की गंगाजली
और पिता के चारों धाम
पुश्तैनी घर की दीवारें
लिखी मिलीं सड़कों के नाम
इस तरह चढ़ा ख़राद पर
नक्शे से निकल गया गाँव

● ● ●

सीमेंटों के जंगल में हैं
छानी छप्पर वाले लोग
भूल गये गोंइड़ के देवता
देशी घी के मोहन भोग
टूटी हैं चौरे की सीढ़ियाँ
सँभला तो फिसल गया गाँव

● ● ● ●

ख़ामोशी है उजड़े नीड़ की
लोग जिसे कहते एकान्त
कुछ का कुछ पढ़ते हैं भोर के—
हवाख़ोर चेहरे संभ्रान्त
गम तवे जैसी हमदर्दी
दाने सा उछल गया गाँव

□

निरगुन हैं फागुन

मन्दिर, मस्जिद दोनों छूटे
हम ठहरे साखी कबीर की

●

कहते लोग अंस बाम्हन का
कहते लोग कुजात जुलाहा
कोई उड़ा रहा बेपर की
जिसने जैसा बैर निबाहा
हम परवाह कहाँ तक करते
पानी पर उभरी लकीर की

● ●

हैं बत्तीसों दाँत जनम से
है अपने घर में निर्वासन
शब्दों की साधना मिली तो
डोल गया देवों का आसन
सबके दु:ख निरगुन हैं फागुन
करती क्या लाली अबीर की

● ● ●

साँसें रोक जहाँ सुनते थे
पदचापें आयीं अनहद सी
वही घाट-सीढ़ियाँ हमें अब
मिलती हैं वर्जित सरहद सी
उजले छद्म देख हँसती है
मटमैली पगड़ी फ़कीर की

□

यह अध्याय तुमसे है

इस कथानक में तुम्हारा—
नाम तो आता नहीं
किन्तु यह अध्याय तुमसे है
●

तुम मिले हो गुफा-चित्रों की—
मुखर अकुलाहटों में
आदिमानव मनु तुम्हीं थे
सघन वन की आहटों में
तुम नहीं मिलते प्रलय के—
बाद की कोमल कथा में
किन्तु यह पर्याय तुमसे है
● ●

इस तरह संकल्प थे—
पुरुषार्थ के रस में पगे थे
लोग सुख की नींद सोते
तुम पहरुये सा जगे थे
नींद में पलकर हुए
बच्चे सयाने तुम नहीं हो—
किन्तु यह समुदाय तुमसे है

• • •

जब मिली दावाग्नि तुमको
मंत्र फूटे स्तवन के
विश्वकर्मा तुम रहे
मण्डप रचे तुमने हवन के
मंत्र कहते देवता है कौन—
किसको हवि मिलेगी
किन्तु यह अभिप्राय तुमसे है

□

कहीं कोई बीज

कहीं कोई बीज तो संकल्प का होगा
हम जहाँ हैं यूँ अचानक हो नहीं सकते

●

हुए जब आहत किसी की भूल से
हम जुड़े हैं और—अपने मूल से
लोग हाथों में लिए पत्थर मिले
हम उपस्थित ही रहे फल-फूल से
कहीं तो होगी प्रकृति में पूर्णता
अन्यथा अपना परिग्रह खो नहीं सकते

● ●

हम जहाँ प्रत्यक्षतः निष्फल हुए
अर्घ्य की जलधार में पीपल हुए
सुगबुगाहट पर हवा के हम जगे
थिरकते पत्ते खुली साँकल हुए
डाल के पंछी हमारे गीत हैं
यह मनोमय देह यूँ ही ढो नहीं सकते

● ● ●

हम हरापन हैं भरे विश्वास के
मुखर बिम्बित इन्द्रधनु आकाश के
बाँस के वन हैं अरण्य-ध्वजा लिए
वंशधर हैं पत्थरों पर घास के
हम वहाँ भी पल्लवित हैं दूर तक
लोग हमको जहाँ जाकर बो नहीं सकते

□

फेफड़े जब माँगते ताज़ा हवा

फेफड़े जब माँगते ताज़ा हवा
धार के विपरीत जातीं मछलियाँ

●

लहर तो जिस रास्ते ले जा रही
देखने में मुश्किलें सुलझा रही
किन्तु सुख की सेज यह रक्षा-कवच
जल-महल की वर्जना उलझा रही
साँस लेने में दुखें जब पसलियाँ
धार के विपरीत जातीं मछलियाँ

● ●

विघ्न-भेदी दृष्टि से आकार से
है फलक उजला स्वयं की धार से
किन्तु जल के बीच यह निस्संगता
और यह विस्थापना आधार से
आँसुओं से जब धुली हैं पुतलियाँ
धार के विपरीत जातीं मछलियाँ

● ● ●

यह नदी जब धमनियों में थम गयी
ज्वार पाकर भी लहर तक कम गयी
यह नदी जो थी मुखर कल हास में
घाट पर ठहरी रगों में जम गयी
हुईं जब शीशाघरों की तितलियाँ
धार के विपरीत जातीं मछलियाँ

□